



सन्त मंगतराम की वाणी में योग-साधना का स्वरूप

डॉ. विनोद कुमार

लवली प्रोफेशनल युनिवर्सिटी, फगवाड़ा (पंजाब)

प्रस्तावना :

भारतीय सैद्धान्तिक परम्परा में योगदर्शन का विशेष स्थान है। यद्यपि योग, कर्म तथा भक्ति से भिन्न मार्ग है, तथापि इसे पूर्णतः इनमें विलग नहीं किया जा सकता। योगशास्त्र के चारों मुख्य स्वरूप- हठयोग, मन्त्रयोग, लययोग तथा राजयोग कहीं न कहीं अन्य अन्य सिद्धान्तों के साथ सम्बद्ध है। पतंजलि के अनुसार चित्तवृत्तियों का निरोध करना ही योग है।¹

चित्तवृत्तियों के निरोध का अर्थ है इन्द्रियों, मन, बुद्धि एवं अंगों का पूर्ण दमन। इसी से आत्म पहचान संभव है। वास्तव में योग आत्मा का परमात्मा में एकाकार हो जाने की प्रक्रिया है।²

महर्षि पतंजलि लिखते हैं कि साधरणतः चित्तवृत्तियाँ पाँच प्रकार की होती हैं- प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति, जिनमें सुखदायी व दुःखदायी दोनों रूप विद्यमान रहते हैं। इन पाँचों को संयमित किया जाए तभी योग का प्रारम्भ होना संभव हो सकता है।

योग-साधना की पूर्ण सफलता के लिए प्रथम कदम क्रिया योग कहलाता है, जिसमें तीन पड़ाव होते हैं- तप, स्वाध्याय और कर्मफल के ईश्वरार्पण की भावना।³ इस प्रक्रिया के दौरान कुछ बाधाएँ भी आती हैं, जिनको दूर किया जाना आवश्यक होता है। इसके लिए योगसूत्र की आठ दशाओं की विवेचना मिलती है-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, जिनके माध्यम से साधक अभीष्ट की प्राप्ति कर पाता है।

सन्त मंगतराम जी, जिनका सम्पूर्ण जीवन ही परम ज्योति परमेश्वर की योग-साधना में गुजरा है, के अनुसार योग की अवस्था वह जहाँ आत्मतत्त्व की पहचान तथा उससे तदाकार हो जाए- ज्यों-ज्यों बुद्धि कर्तापन का त्याग करती हुई तमाम शारीरिक कर्म प्रभु आज्ञा में समर्पण करती है, त्यों-त्यों तमाम वासना के जाल से पवित्र होकर के निर्वासि स्वरूप आत्म आनन्द में निहचल होती है। ऐसी स्थिति को ही 'योग' कहते हैं।⁴ यह योग की साधना सभी प्रकार की चिन्ताओं से मुक्ति देने वाली है, तभी तो उन्होंने सत्ययोग की पहचान करने की बात कही है। योग धारण करने से मन की सभी कल्पनाओं का नाश होता है और जीवन मुक्त पथ पा जाता है। यही कारण है कि पीरप्पैगम्बर, सिद्ध, अवतार, ऋषि-मुनि आदि सभी इसकी सराहना करते हैं। मंगतराम जी जीव को योग-साधना की शिक्षा देते हुए कहते हैं-

निर्मल दिशा है योग की, निसदिन सोधे नाम।

निस्तर भए संसार से, विरत धार निष्काम॥

सार जगत में है ये ही, खाटो साचा लाह।

काया गढ़ साधन करो, देखो बेपरवाह॥⁵

राजयोग क्या है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए स्वयं मंगतराम जी ने स्पष्ट किया था कि -'राजयोग पुरातन विद्या है। इस योग का उद्देश्य कुण्डलिनी शक्ति का जागरण है।

इस शक्ति का जागरण नाम और प्राण की धारा को एक करके किया जाता है। जब यह कुण्डलिनी जाग जाती है तो विभिन्न चक्रों का भेदन करती हुई अन्त में गगन अर्थात् कपाल में स्थित होती है। उस समय साधक समाधि अवस्था को प्राप्त हो जाता है।⁶

योग की इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को सन्त मंगतराम जी की वाणी में यत्र तत्र दिखाई देता है। योग की समस्त क्रिया को वाणी में बड़ी सूक्ष्मता के साथ विवेचित किया गया है- किस प्रकार योगी प्रथम मूल द्वार पर बन्ध लगाकर पवन को साधता है। इरध-उरध में अपनी स्मृति को दृढ़ करता है तथा दसवें द्वार जो कि ब्रह्म मुख कहलाता है, को खोलने का प्रयास करता है। सुषुम्ना के निम्न छोर पर जो कंवल विद्यमान रहता है, वहाँ तक प्रकाश यानि बुद्धि की पहुँच होती है तथा वह मूल बंकनालि में स्थित होती है। बुद्धि पिंगला इडा और सुषुम्ना को साधकर समस्थितधारण करती है, और कुण्डलिनी रूपि नागिन को जगाने का प्रयास करता है, जो अमृतकुण्ड का स्रोत है। मंगतराम जी का विचार है कि यह योग की साधना अत्यन्त कठिन है, कोई सच्चा गुरुपुत्र ही इसमें सफल हो पाता है।⁷

यह दुर्गम साधना जो अगम्य तत्त्व को आत्मा में ही सुलभ करा देती है और यह सच्चे गुरु के बिना संभव नहीं। जब कोई सच्चा मार्गदर्शक मिल जाता है तभी इसमें सफलता मिलती है-

जो कोई खोजे प्रेम से, कर सिद्ध साधु का संग।
मंगत कहे समुझाय के, तब चढे योग का रंग॥⁸

मंगतराम जी ने नाथों के हठयोग की तरह शरीर को बिल्कुल सुखा देने तथा तरह-तरह के कष्ट देने को व्यर्थ बताया है, जब तक कि मन से संसार से लगाव समाप्त नहीं हो जाता। उनकी मान्यता है कि केवल कानों को छिदवा कर मुंदरा पहन लेने से अथवा सिर पर जटाएँ धारण करने से शरीर पर भस्म लगा लेने से तथा न ही तरह-तरह के पाखण्डों से योग हो सकता है। योग की धारा तो ज्ञान की धारा है, जो मन को छेदने से प्राप्त हो सकती है। शरीर पर दमन करने की बजाय मन को दमन करना जरूरी है।..लेकिन इसके लिए शुद्ध विवेक, शुद्ध वैराग्य तथा शुद्ध अभ्यास की पहचान और दृढ़ता केवल तत्व ज्ञानी सतगुरु की प्राप्ति से ही हो सकती है, क्योंकि सच्चा गुरु ही सिद्ध बीज मन्त्र प्रदान कर बुद्धि को निश्चल ध्यान धारणा का मार्ग दिखा सकता है। गुरुकृपा के चलते ही जीव नाम की साधना करके उर्ध्व कंवल को प्रकाशित कर पाता है। सुषुम्ना नाडी खुलती है, जीव की तृष्णाओं का शमन हो जाता है और शब्द रूप तत्त्व अन्तर में ही प्रकट हो जाता है।-

खुले सुखमनी तृष्णा विनासे। परगट शब्द तब अन्तर भासे॥
छिन-छिन तिसमें सुरत पिरोये। मनसा लीन मन निर्मल होये॥⁹
लेकिन इसके लिए पहले शुद्ध विवेक को धारण करना लाजमी है।

क्योंकि तभी सभी दोषों से पार हुआ जा सकता है। 'यानि सादगी, सेवा, सत, सत्संग और सतनाम के सिमरण में धारणा दृढ़ करनी चाहिए। जब ऐसे सदाचार में बुद्धि निश्चल होवे तब ही भयानक काम, क्रोध, लोभ, मोह और अंधकार की अग्निशीलता को प्राप्त और अन्तःकरण में देववृत्तियाँ पूर्ण रूप में प्रकाशित होती हैं।'¹⁰

योग की सम्पूर्ण प्रक्रिया को मंगतराम जी ने बड़ी सरलता के साथ स्पष्ट किया है, जिसे निम्न ढंग से देखा जा सकता है। मंगतराम जी की धारणा रही है कि योग साधना में सफलता के लिए सर्वप्रथम जीवन को निर्मल करना आवश्यक है, होना और न होना सभी कुछ परमात्मा की आज्ञा में मानते हुए बुद्धि को स्वतन्त्र किया जाए। यम-नियम का पालन करता हुआ सहज रूप में आसन लगाए और मन इन्द्रियों पर काबु करे, देह को नाशवान समझकर श्वास अन्दर-बाहर जाने की प्रक्रिया पर बुद्धि स्थिर करे। शरीर और प्रकृति के पञ्चीस विकारों को क्षणिक मानते हुए नौ द्वारों के पार दसवें द्वार तक बुद्धि को ले जाए। इस प्रकार का आसन लगाकर श्वास क्रिया पर काबु कर सुरति को पाताल में स्थिर करना ही योग की सफलता की तरफ पहला कदम है-

ध्रुलोक से पवन को बांधे, सुरत पाताल पठाए।
इरध-उरध में आसन करके, गुरुमुख योग कमाए॥¹¹

आसन की स्थिति के पश्चात प्रत्याहार की स्थिति आती है, जहाँ समस्त अयोग्य, असत् तथ्यों को मानसिक शक्ति से त्यागना होता है। मंगतराम जी का कथन है कि शुद्ध विवेक की सार यह है कि तमाम प्रकृति को विनाश और दुख रूप समझकर एक अविनाशी सरूप के परायण होना और बार बार अनात्म पदार्थों के मोह का त्याग करना और सत सरूप के अनुभव करने का अधिक यत्न करना। ऐसा अनुराग ही शुद्ध विवेक की दृढ़ता को देने वाला परम कल्याण सरूप है।¹² इस प्रक्रिया में सफल होकर ही ध्यान की अगली स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है। ध्यान में स्थित होकर धारणा तक पहुँचा जा सकता है, जहाँ ईश्वर को स्मरण करने उसका भजन करने की कोशिश नहीं करनी पड़ती। "भजन करते करते यानि ब्रह्म शब्द में एकसू (एकाग्र) होते होते ध्यान की हालत प्राप्त हो जाती है। धारणा में मन एक उसी को धारण कर लेता है-

मन की विरति होई लवलीना। आलख शब्द घट अन्तर चीना॥
 उपजे शब्द बहुरंग की तारा। अमरत धुनत बाजन्त सारा॥
 नाना रंग जोती दरसाई। कोट भान छबी गिनी ना जाई।¹³

और इस प्रकार साधक ध्यान की सीढ़ी पर प्रवेश पा जाता है। मंगतराम जी फरमाते हैं कि जिस वक्त तमाम कल्पना से मन न्यारा होकर ब्रह्म शब्द में स्थित होता है, आकार, दृष्ट की कल्पना नाश हो जाती है और केवल ब्रह्मानन्द को अनुभव करता है, इस अवस्था को ध्यान कहते हैं।¹⁴ इस स्थिति में पूज्य-पूजक भाव भी समाप्त हो जाता है और कुछ भी प्रयास करना नहीं पड़ता। वह स्वयं परम पुरुष सतरूप में स्थित हो जाता है।¹⁵

मंगतराम जी परमाते हैं कि ऐसी अवस्था को प्राप्त पुरुष सत सरूप में स्थित हो जाता है और किसी वस्तु की न उसको कल्पना रहती है और न ही किसी से वह द्वेष करता है। बल्कि प्रेम सरूप में मग्न रहता है। इस अवस्था को प्राप्त पुरुष जोगिन्दर कहलाता है-

नाम पवन मन इस्थिर कर सुन्न लगावे ध्यान।
 सो ही जोगिन्दर आखीए, जो ये घट परवान॥¹⁶

ध्यान की अवस्था को दृढ़ता प्राप्त करने वाला फिर योग साधना की अगली सीढ़ी पर चढ़ता है, जिसे समाधि कहा जाता है। तमाम कठिनाइयों को पार करता हुआ जीव समाधि को प्राप्त करता है। इस स्थिति में बुद्धि शब्द रूप परमेश्वर में लीन हो जाती है। सभी प्रकार की कल्पना, अहंभाव, द्वैत भाव नष्ट होकर निज रूप ब्रह्म की एकता का आभास हो जाता है और नाभि कंवल पर विराजमान परम ज्योति के दर्शन होते हैं। योगी स्वयं कर्मबन्धन से मुक्त होने का अधिकारी हो जाता है

सुरत अन्तर में रसी, शब्द सुनी टंकोर।
 'मंगत' निज घर आ बसे, बिनसी काल करम की दौड़॥¹⁷

ऐसी स्थिति को पार कर साधक ब्रह्मसरूप हो जाता है। समाधि की स्थिति के लिए साधक आगे बढ़ता बढ़ता है और दुर्मति का समूल विनाश हो जाता है। मंगतराम जी ने इस अवस्था को इस ढंग से बखान किया है- "समाधि अवस्था को प्राप्त हुआ पुरुष हर वक्त अपने आपको अकर्म, असंग, निर्धार, सर्वज्ञ, निर्वास अचल, अछेद और गुणातीत जानता है और शरीर को महज छाया सरूप देखता है। ऐसी दृढ़ स्थिति को जो प्राप्त हुआ वह ही सर्व का मानी और सर्व का अधिकारी है।"¹⁸

सन्त मंगतराम जी द्वारा योग की अत्यन्त कठिन विधि को सरलता के साथ काव्य में सुन्दर संयोजित किया गया है, जिसे साधारण पाठक भी सहजता के साथ समझ सकता है। यथा-

प्रथमे आसन सहजे बांधे। इन्द्री इस्थिर मनुआ खांडे॥
 मुख नयन जीभा को बांधे। साचा नाम हिये में सांधे॥
 धीरे धीरे पवन को पीवे। शुद्ध ध्यान में नाम जपीवे॥
 हकार सकार को एह विध मिलाए। बांधे पवन पच्छिम घर जाए॥
 मूल द्वार में बन्ध लगाए। उलट पवन सत नाम कमाए॥
 स्वास सुरत मिल किया हलोल। नाभी अस्थान में पाई कलोल॥
 ईडा पिंगला सुखमन नाली। तीनों मिलें ऊपर तिरनाली॥
 सुखमन खुली शब्द घर जागा। साध सीख पाई बड़वागा॥
 आसन धरती सुरत आकासे, लखे ज्ञान निरवानी॥
 उपजे शब्द जोत दरसावे, सुरत भई अकलानी॥
 उपर चढ़े शिखर को जाए। केवल नाद संग प्रीत कमाए॥
 सुन्न गूफा में करे ध्यान। अनहद गरजे सहज की तान॥
 सुरत समाई शब्द में, चढ़ी सुन्न के देश।
 'मंगत' नजरी आया, आद पुरख जगदीश॥¹⁹

इस प्रकार स्पष्ट है कि संत मंगतराम जी द्वारा विवेचित समता-योग तथा भारतीय योग परम्परा में उपलब्ध योग-साधना में अद्भुत साम्य दीख पड़ता है। दूसरे शब्दों में ऐसे भी कहा जा सकता है कि सन्त मंगतराम जी ने भारतीय परम्परा में पतंजलि परम्परा को आधुनिक युग में भी कायम रखा है। और इसे साधारण जनता तक साधारण भाषा और शैली में प्रस्तुत किया है।

सन्दर्भ:

- 1 पातंजलि योगसूत्र, 1:2
- 2 इन रीयल सेन्स, योगा इज़ यूनियन विद गॉड, इट मीन्स ज्वायनिंग ओफ़ इन्डिविजुयल सोल विद यूनिवर- आई डिवाइन बीन्ग, पॉवर अनलिमिटेड, पृ.59
- 3 योगसूत्र, 2:1
- 4 श्री समता विलास, पृ.597
- 5 श्री समताप्रकाश, पृ.238
- 6 श्री समता प्रकाश, पृ.238
- 7 श्री समताप्रकाश, पृ.55
- 8 श्री समताप्रकाश, पृ.239
- 9 श्री समता प्रकाश, पृ.696
- 10 श्री समता विलास, पृ.584
- 11 श्री समता प्रकाश, पृ.232
- 12 श्री समता विलास, पृ.438
- 13 श्री समता प्रकाश, पृ.232
- 14 श्री समता विलास, पृ.221
- 15 श्री समता विलास, पृ.221
- 16 श्री समता प्रकाश, पृ.237
- 17 श्री समता प्रकाश, पृ.975
- 18 श्री समता विलास, पृ.225
- 19 दीनानाथसराफ़, महात्मासंगतराजजी, पृ.49